शोध पत्रिका

वर्ष 69, अंक 1–4, पूर्णांक 274 – 277, ISSN 0975-6868

साहित्य संस्थान

इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज

जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी), उदयपुर 313001 (राजस्थान)

(राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् द्वारा श्रेणीकरण में "A" दर्जा प्राप्त (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी)

प्राचीन लिपियों
पर
राष्ट्रीय कार्यशाला
11 से 17 जनवरी, 2018
साहित्य संस्थान
(इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज)
जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी यूनिवर्सिटी), उदयपुर (राज.)
प्रकाशन

प्राचीन लिपियों पर राष्ट्रीय कार्यशाला

राष्ट्रीय कार्यशाला
पाषाण कालीन औजार निर्माण तकनीक
साहित्य संस्थान
इतिहास विभाग
उद्गम ट्रस्ट, उदयपुर
प्रकाशन

पाषाण कालीन औजार निर्माण तकनीक पर राष्ट्रीय कार्यशाला

शोध पत्रिका

वर्ष–69, अंक 1–4 (पूर्णांक 274–277)
जनवरी–दिसम्बर, 2018

A peer-reviewed and UGC approved Journal
ISSN 0975 - 6868

जीवनसिंह खरकवाल
सम्पादक

कुलशेखर व्यास
सह–सम्पादक

साहित्य संस्थान

(इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज)

जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी)
उदयपुर – 313001 (राजस्थान)

(राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् द्वारा श्रेणीकरण में 'A' दर्जा प्राप्त डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी)

इतिहास, पुरातत्व, साहित्य, भाषा, दर्शन,
कला व संस्कृति की त्रैमासिक अनुसंधानिका

- **संरक्षक**

श्री एच. सी. पारख
कुलाधिपति
जनार्दनराय नागर
राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी), उदयपुर

कर्नल प्रो. एस. एस. सारंगदेवोत
कुलपति
जनार्दनराय नागर
राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी), उदयपुर

सम्पादकीय सहयोग :
कृष्णपाल सिंह देवड़ा, नारायण पालीवाल, शोयब कुरेशी, महेश आमेटा

- **प्रकाशक**

© साहित्य संस्थान
(इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज)
जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी)
उदयपुर – 313001 (राजस्थान)

मूल्य : देश में – 200 (दो सौ रुपया मात्र), विदेश में – 600 (छः सौ रुपया मात्र)
मुद्रकः चौधरी ऑफसेट प्रा. लि.
11–12, गुरु रामदास कॉलोनी, उदयपुर

मुख पृष्ट चित्र : 'मत्स्य अवतार' जयदेवकृत गीतगोविन्द पोथी, मेवाड़ शैली, 1789 ई.

विषयानुक्रम

क्र. सं.	आलेख	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	**सम्पादकीय**		
2.	वैश्विक, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय इतिहास	महावीर प्रसाद जैन	1–13
3.	गोदान की पृष्ठभूमि	जीवनसिंह ठाकुर	14–18
4.	अलाउद्दीन खिलजी के मेवाड़ अभियान से जुड़ी लोक स्मृतियाँ एवं कुछ अनुद्घाटित प्राथमिक स्रोत	प्रतिभा पाण्डे एवं हेमेन्द्र सिंह सारंगदेवोत	19–26
5.	वेदों में पर्यावरण संरक्षण	भूपेन्द्र कुमार राठौर	27–35
6.	The Rural Economy of Marwar State during 18th Century	Kanchan Lawaniya	36–46
7.	The Mathilakam Records, Travancore, Kerla	Gayathri R.S.	47–54
8.	कोटा क्षेत्र के शिल्प में प्रदर्शित नृत्य मुद्राएँ	मोनिका गौतम	55–58
9.	मेवाड़ की दो सचित्र पोथियों में दशावतारों का अंकन	मोनिका चौधरी	59–66
10.	मेवाड़ का राजत्व सिद्धान्त–एक विवेचना	मनीष श्रीमाली	67–73
11.	मेवाड़ राज्य का देवगढ़ ठिकाणा और स्थापत्य परिचय (16वीं से 20वीं शताब्दी ईस्वी)	ऋतु जोशी एवं हेमेन्द्रसिंह सारंगदेवोत	74–80
12.	स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी नीतिकाव्य में युगबोध	सुधा शर्मा	81–88
13.	मेवाड़ धरा के कतिपय सन्त : एक अध्ययन	प्रफुल्ल ताकड़िया	89–96
14.	राजस्थान के हिन्दी जैन कवि व उनका साहित्य	नवल किशोर	97–101
15.	कमलेश्वर : दलित साहित्य के चिन्तनशील पत्रकार	तुकाराम दौड	102–106
16.	Maharaja Ram Singh II of Jaipur : His Photo graphy and Women	Ritika Meena	107–113
17.	Life of the British in India during Colonial Period	Sarve Daman Mishra	114–125
18.	अशोक का राजधर्म	अरविन्द कुमार	126–131
19.	भारतीय पत्रकारिता में बढ़ता पूर्वाग्रह : एक विश्लेषण	निखिल शर्मा	132–138
20.	**पुनर्नवा**		
	1. भारतीय नृत्य की मुद्राएँ	श्रीयुत देवीलाल सामर	139–145
	2. रसविद्या पर चूड़ामणि मिश्र की रसकामधेनु	श्रीयुत परशुराम कृष्ण गोड़े	146–153
21.	**पुस्तक समीक्षा**		
	1. महामना मदनमोहन मालवीय एक व्यक्तित्व एवं विचार	आभा गुप्ता	154–156
	2. बाँसवाड़ा (वागड़) की कला और सांस्कृतिक विरासत	नारायण पालीवाल	157–158
	3. राजराणा झाला जालिम सिंह	शोयब कुरेशी एवं कृष्णपाल सिंह देवड़ा	159–160
	4. Memorial Monuments of Rajasthan: The Cenotaph	Koel Ray	161–162
22.	**गति प्रगति**	कुलशेखर व्यास	163–213

शोध पत्रिका वर्ष 69 (1–4) 2018, मनीष श्रीमाली (67–73) © साहित्य संस्थान
जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी यूनिवर्सिटी), उदयपुर
ISSN 0975-6868

मेवाड़ का राजत्व सिद्धान्त–एक विवेचना

मनीष श्रीमाली

सारांश

किसी भी राष्ट्र की विभिन्न गतिविधियों के बीच सुचारू रूप से समन्वय स्थापित करने के लिए एक सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में आदिम सभ्यताओं के काल से ही मुखिया, सरदार एवं राजा के रूप में प्रशासनिक व्यवस्थाओं को विकसित होते हुए देखा जा सकता है। शक्ति जब मुखिया से राजा के पास स्थानांतरित हो रही थी तब उसे सत्ता के रूप में स्थापित होने के लिए उसे वैधता की आवश्यकता थी, जिससे उसे सर्वस्वीकृति प्राप्त हो सके। इसी शक्ति से सत्ता के विकास क्रम में ही विभिन्न राजत्व सिद्धांत का उद्‌भव दिखाई देता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भी मेवाड़ में शक्ति संतुलन में हो रहे बदलाव ने राजत्व सिद्धांत को किस प्रकार प्रभावित किया उसको यहाँ इंगित करना है। कोई भी देश और काल रहा हो सदैव राजा के साथ एक राजत्व सिद्धांत दृश्यगत होता है जैसे– समझौतावादी एवं रहस्यवादी। राजत्व सिद्धांत के निर्माण की पृष्ठभूमि में स्थानीय परिस्थितियाँ एवं आवश्यकता सदा महत्वपूर्ण भूमिका में रहती है। मेवाड़ का राजत्व इसके अन्य पड़ोसी रियासतों से भिन्न एवं विशिष्ट है। यहाँ राजत्व के दैवीय सिद्धांत में भी परमेष्ठी प्रकार का राजत्व सिद्धांत प्रचलित रहा है। परमेष्ठी प्रकार के राजत्व सिद्धांत के उद्‌भव में यहां की स्थानीय परिस्थितियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है अतः यहीं वजह है कि मेवाड़ में भीलों का बाहुल्य एवं स्थानीय अधिष्ठाता देव एकलिंगनाथ का मेवाड़ के राजत्व सिद्धांत में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संकेत शब्द : राजत्व, राजा, दैवीय

प्राचीन काल में आदिमानव कृषि करने लगा तभी से घुमक्कड़ जीवन को छोड़कर स्थायी होकर समूह में रहने लगा एवं उसे समाज में एक व्यवस्था तथा कबीले के मुखिया की जरुरत महसूस हुई। मुखिया, जो युद्ध एवं शान्ति के समय उनका नेतृत्व कर सके। यह व्यवस्था वैदिक कालीन समाज जैसी थी। युद्ध आदि क्रियाओं से कालान्तर में जैसे ही जनसंख्या एवं भू–भाग में वृद्धि हुई तब कबीले के मुखिया की भूमिका में बदलाव आने लगा। मुखिया अब राजा, महाराजा, सम्राट जैसे विरुद धारण करने लगा तथा उसकी सत्ता को वैद्यता दिलाने के लिए राजत्व का सिद्धान्त लाया गया।

राजत्व सिद्धान्त सदैव समय एवं परिस्थितियों की माँग से प्रभावित रहा। यही कारण है कि भिन्न–भिन्न राजत्व सिद्धान्त दृष्टिगत होते हैं। प्रधानतः दो राजत्व सिद्धान्त प्रचलित है–समझौतावादी एवं रहस्यवादी (बाशम 2017 : 57)। समझौतावादी राजत्व जैन एवं बौद्ध धर्म में प्रचलित थे, जो गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के सदृष्य थे। रहस्यवादी राजत्व सिद्धान्त हिन्दू व इस्लाम में प्रचलित थे। इन्होंने राजतन्त्र की नींव रखी। राजत्व के रहस्यवाद के अन्तर्गत दैवीय सिद्धान्त काफी प्रचलित था। दैवीय सिद्धान्त के अन्तर्गत राजा स्वयं देवता नहीं तो देवताओं का प्रत्यक्ष रूप से साथी था। राजा में दैवीय शक्तियों को स्थापित करने हेतु विभिन्न कर्मकाण्डों एवं यज्ञों का सहारा लिया जाता था। राजसूय यज्ञ इन यज्ञों में सबसे महत्त्वपूर्ण था, जिसे पूर्ण होने में एक वर्ष लगता था, यह राजा को दैवी शक्ति से सम्पन्न कर देते थे। यद्यपि राजसूय का

प्राप्ति 26.09.2018 समीक्षा 18.11.2018 स्वीकृति 20.11.2018

Email : manish7shrimali@gmail.com
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) मो. 8005016971

स्थान उत्तरकाल में साधारण अभिषेक ने ग्रहण कर लिया था, किन्तु इसका उद्देश्य राजा की दैवीय शक्तियों को स्थापित करना ही रहा (बाशम 2017 56)।

मेवाड़ में भी राजत्व के रहस्यवादी परम्परा का अनुसरण करते हुए राजत्व के दैवीय सिद्धान्त को अपनाया गया। मेवाड़ के दैवीय राजत्व सिद्धान्त की जानकारी एकलिंग महात्म्य, एकलिंगपुराण, अमरसार एवं अमरकाव्यम् आदि ग्रन्थों से मिलती है। बापा एवं हारित राशि के सन्दर्भ में दैवीय उत्पति का सिद्धान्त मिलता है। एकलिंग महात्म्य (शर्मा, प्रेमलता 1976 : 9) व एकलिंग पुराण (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 107) में वर्णन आता है कि भवानी ने रुष्ट होकर द्वारपाल चण्ड और नन्दी को मेदपाट में मनुष्य के रूप में जन्म लेने का श्राप दिया था। वे दोनों ही क्रमशः हारित और बापा के नाम से जाने गये। एक अन्य उदाहरण एकलिंगपुराण में मिलता है कि नारायण, भगवान विष्णु एकलिंगजी की आज्ञा से महाराज बाष्प के पौत्र गोविन्द के रूप में उनके वंश में धर्म की रक्षा करने के लिए उत्पन्न हुए (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 292)। दैवीय अवतार के माध्यम से ही यहाँ पर दैवीय राजत्व को स्थापित किया गया है। दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त का लगभग सभी राजवंशों ने दावा किया है, किन्तु मेवाड़ के राजत्व में एक नवीन आयाम और दिखाई देता है, जो कि अन्यत्र दुलर्भ है। मेवाड़ में एकलिंगनाथ को शासक स्वीकारा गया है तथा महाराणा ने स्वयं को दीवान अर्थात सेवक माना है (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 19)। देवता को ही राजपद पर स्थापित कर स्वयं को उसके सेवक के रूप में कार्य करना, राजत्व सिद्धान्त की भिन्न रूप में व्याख्या करता है। यह व्यवस्था बहुत हद तक 'परमेष्ठी' व्यवस्था के सदृश जान पड़ती है। परमेष्ठी प्रकार का शासन विधान ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित आठ प्रकार के शासन विधानों में से एक है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि चारों दिशाओं में अभिषेक के बाद उर्ध्व दिशा में पारमेष्ठेय के लिए अभिषेक किया और वह राजाओं का पिता हो गया (उपाध्याय 2006 : 476) अर्थात स्वयं ईश्वर ही क्षेत्र के अधिपति हो गये। अतः मेवाड़ में प्रचलित राजत्व परमेष्ठी प्रकार की व्यवस्था के समीप है। उपर्युक्त सिद्धान्त के सन्दर्भ में अमरसार (देखें टिप्पणी–1) में वर्णित कथानक महत्वपूर्ण है। अमरसार में उल्लेख मिलता है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा तीन लोक स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल की रचना की। साथ ही साथ तीनों लोकों के स्वामी भी रचे गए। स्वर्ग का स्वामी इन्द्र, पाताल का शेषनाग तथा पृथ्वी का स्वामित्व भगवान् एकलिंगनाथ ने सूर्य और चन्द्र नाम के श्रेष्ठ वंशो को दिया। भगवान् शंकर की आज्ञा से ही यक्षों ने चित्रकूट नामक अत्यन्त सुन्दर गढ़ का निर्माण किया (शास्त्री, भानुकुमार 2010 : 42–44) जब बाष्प एवं हारित राशि ने भगवान् एकलिंगनाथ की आराधना की तब उससे प्रसन्न होकर एकलिंगनाथ ने हारित राशि को कैलाश बुला लिया तथा बाष्प को चित्रकूट का अधिपति बना दिया (शास्त्री, 2010 : 117)। प्रस्तुत आख्यान एकलिंगनाथ की महत्ती भूमिका को स्वीकारता है।

राजत्व के निर्माण में दो पक्षों की अहम् भूमिका होती है–धार्मिक और लौकिक। राजत्व की माँग लौकिक आवश्यकता रही है, किन्तु उस सत्ता को वैधता दिलाने का कार्य धार्मिक पक्ष करता है। उपर्युक्त दोनों आख्यान राजत्व के दैवीय एवं परमेष्ठी प्रकार की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ सैद्धान्तिक आधार प्रदान करते हैं, जो कि धार्मिक पक्ष को प्रतिबिम्बित करता है। धर्मशास्त्र में राजत्व के दैवीय सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। उसी प्रकार राजत्व के लौकिक सिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलती है। कौटिल्य उपयोगितावादी था (देखें टिप्पणी–2)। उसकी दृष्टि में राजा का देवत्व नहीं, उसकी उपयोगिता ही उसकी स्थिति का आधार है। कौटिल्य द्वारा राजा के प्रति की गई दैवी भावना की अभिव्यंजना प्रयोजनात्मक है। उसकी विशिष्ट दार्शनिक एवं राजनैतिक अभिप्राय है। वह राजा की पक्ष पुष्टि एवं स्थिति दृढ़ता के निमित्त उसके दिव्य स्वरूप का संरक्षण करता है (मिश्र, कौशल किशोर 2012 : 144)। राजनीतिक

लेखक और विधिवेत्ता राजपद की महत्ता पर जोर देकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए बल्कि उन्होंने काल की परिस्थितियों से विवश होकर इसमें जानबूझकर दैवीय तत्व भी मिला दिया ताकि अधिकार के सिद्धान्त को बल मिल सके। इस तरह राजाज्ञा का पालन एक धार्मिक कर्त्तव्य बना दिया गया (इब्ने, सन् 1997 : 43–44)। दैवीय सिद्धान्त प्राचीन एवं मध्यकाल की आवश्यकता थी, यही कारण था कि राजपद को सुदृढ़ करने हेतु धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही विचारकों ने इसका प्रयोग किया। मनु, कौटिल्य से लेकर अबुल फजल तक सभी ने दैवीय सिद्धान्त को स्वीकारा है।

दैवीय सिद्धान्त के इतर परमेष्ठी प्रकार का राजत्व अर्थात् स्वयं परमेश्वर का अधिपति होना भी राजत्व का अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसमें राजा दैवीय अंश न होकर स्वयं देवता ही है। मेवाड़ के अतिरिक्त इस प्रकार की शासन व्यवस्था दक्षिण में विजयनगर एवं उड़ीसा के गजपति शासन में थी। हरिहर एवं बुक्का दोनों संगम बन्धुओं ने दिल्ली सल्तनत से सम्बन्ध विच्छेद कर स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया तथा तुंगभद्रा के दक्षिण में अणेगोन्ड़ी के आमने–सामने दो नए नगर, विजयनगर (देखें टिप्पणी–3) व विद्यानगर (देखें टिप्पणी–4) बसाये। संगम बन्धुओं को इस्लाम से पुनः हिन्दू धर्म में दाखिल कराने में सन्त विद्यारण्य की महत्वपूर्ण भूमिका थी, इसी कारण दूसरे नगर का नाम विद्यानगर पड़ा सन् 1336 ई. में भगवान् विरुपाक्ष की उपस्थिति में हरिहर प्रथम ने हिन्दू धर्म रीति से अपना राज्याभिषेक किया। कृष्णा नदी से दक्षिण की सारी भूमि देवता मानी जाती थी और हरिहर ने देवता के अभिकर्त्ता के रूप में ही राज्य का शासन–भार ग्रहण किया तथा श्री विरुपाक्ष के हस्त–चिह्न से ही राज्य के सभी कामों का प्रमाणीकरण होता था (शास्त्री, नीलकण्ठ, 2014 203–204)। इसी प्रकार मेवाड़ के शासक जब भी एकलिंगनाथ के दर्शन हेतु उपस्थित होते थे तब वे समस्त राजचिह्नों को छोड़ सेवक के रूप में स्वर्ण छड़ी धारण करते थे (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 270), जिस प्रकार से मेवाड़ में दीवाण की परम्परा सदियों से जारी है। उसी प्रकार विजयनगर के उत्तराधिकारियों ने भी इस प्रथा को जारी रखा। प्रस्तुत आख्यान परमेष्ठी प्रकार की व्यवस्था के धार्मिक पक्ष को बताता है। राजत्व के लौकिक पक्ष को देखते हैं तब बापा के समय की परिस्थितियाँ एवं विचारधारा ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। प्रथमतः बापा का लालन–पालन ब्राह्मण परिवार में हुआ था18 (श्यामलदास, 2007 : 251)। नैणसी की ख्यात, रावल समरसिंह की चित्तौड़ प्रशस्ति एवं एकलिंग महात्म्य में बापा को विप्र कहकर सम्बोधित किया गया है (ओझा, 2015 : 91–92)। द्वितियतः नागदा व उसके आसपास का क्षेत्र जनजातिय बाहुल्य था (श्यामलदास 2007 : 196)। तृतीयः नागदा मन्दिर नगर था। ऐसी मान्यता है कि यहाँ 399 मन्दिर थे और उसकी झालरें एक साथ बजती थी पूरा नगर शिवाराधना से गूंज उठता था। आज भी इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में प्राचीन मन्दिर मौजूद है (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 106)। ये तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस क्षेत्र में धार्मिक प्रभाव प्रारम्भ से ही बहुत अधिक रहा था।

उपर्युक्त कथन को लौकिक आधार देखा जाए तो लगता है कि बापा, जो कि ब्राह्मणों की गाय चराता था, जब उसने स्वयं को उस क्षेत्र के नेतृत्वकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत किया तब जन स्वीकृति प्राप्त करने हेतु आवश्यक था कि उसके लिए कोई दृढ़ सैद्धान्तिक आधार भी हो। वैदिक ग्रन्थों में राजकार्य क्षत्रिय कर्म माना गया है। बापा ने एकलिंगनाथ, जो कि इस क्षेत्र के स्थानीय अधिष्ठाता देवता थे (मास्टर्स 2011 : 37), स्वयं को उनका दीवाण (सेवक) घोषित कर राजकाज का दावा प्रस्तुत किया। बापा ने हारित राशि का सहयोग लिया होगा, जैसा कि कथानक से ज्ञात होता है कि हारित राशि एकलिंगनाथ के मुख्य पुजारी थे (2011 : 37)। हारित राशि के समर्थन से बापा कि घोषणा को वैधता मिली एवं जनसमर्थन भी बढ़ा। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना में सायण (देखें टिप्पणी–5) और माधवाचार्य जैस आचार्यों की महत्वपूर्ण

भूमिका रही थी। सल्तनत काल में दिल्ली सुल्तानों के प्रभाव में दक्षिण भारत में मुस्लिम संस्कृति का प्रसार हो रहा था तब उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू राज्य की पुनर्स्थापना का प्रयास सायण और माध्वाचार्य जैसे वैदिक विद्वान गुरुओं के संरक्षण में हुआ (उपाध्याय, 2003 : 133)। माध्वाचार्य, जो कि पहले मन्त्री थे बाद में संन्यास ग्रहण कर विद्यारण्य नाम से शृंगेरीमठ के प्रधान बन गए (उपाध्याय, 2003 : 141), यही शृंगेरीमठ विजयनगर साम्राज्य का प्रधान केन्द्र बना, जब बापा को राज मिला तब बापा ने रावल कि उपाधि धारण कि, गौरीशंकर ओझा ने रावल शब्द का अर्थ राजकुल, राजवंश और राजसी घराना माना है (ओझा, 2015 : 109)। श्यामलदास ने भी रावल पद का अर्थ बहादुर राजपूत को शोभा देने वाला है। राव शब्द उसके लिए आता है, जो लड़ाई के समय गर्जना को स्वीकार करें (श्यामलदास 2007 : 250)। राजप्रशस्ति महाकाव्य में भी रावल पदवी राज्य को धारण करने के सन्दर्भ में ही आई है (मेनारिया, 1976 : 33)। ब्रायन मास्टर्स ने अपनी पुस्तक महाराणा में रावल क्षत्रिय जाति की पारम्परिक उपाधि मानी है (पालीवाल, 2012 : 39)। बापा ने कोई भारी भरकम उपाधि नहीं केवल रावल जैसी सामान्य उपाधि से ही सन्तुष्ट हो गये। इस उपाधि का मन्तव्य स्वयं को विप्र से अलग राजकुल का बताना भर था। चूंकि इस क्षेत्र में भील समुदाय की अधिकता रही है। अतः उनके समर्थन हासिल करने हेतु एक ओर तो इस क्षेत्र के आराध्य देव के प्रति श्रद्धा प्रकट की वहीं दूसरी ओर शासन व्यवस्था में भी इनके अस्तित्व को स्वीकारा जैसे–बापा के समय से ही भील वर्ग राज्याभिषेक के दौरान शासक का रक्त से तिलक करता है (पालीवाल 2012 : 36)। मेवाड़ के राज्यचिह्न में भी एक ओर भील व्यक्ति को स्थान दिया गया (गर्ग, 2013 : 123)। महाराणा प्रताप स्वयं भील समुदाय के मध्य कीका नाम से लोकप्रिय थे (पालीवाल, 2012 : 26)। भील सरदार पूँजा को उनकी सेवा के लिए राणा का खिताब दिया गया था (गर्ग, 2013 : 124)। रणछोड़ भट्ट के अमरकाव्यम् से एक कथानक मिलता है, जो मेवाड़ में राजपूतों के साथ भीलों के महत्व को स्वीकार करता है। प्रस्तुत कथानक में वर्णन मिलता है कि राहप, जब सीसोदा ग्राम शिकार करने जाता है तो वहाँ देखता है कि खरगोश जैसा एक छोटा जन्तु शेर से लड़ रहा है तब उसे लगता है कि यह तो यहाँ कि भूमि का पराक्रम है, जिस वजह से यहाँ पर रहने वाला कायर व्यक्ति भी वीर होता हैं, जो वीर हैं वे अतिवीर होते हैं। इस सारे घटनाक्रम के समय उसके साथ एक शकुनि (जादू–टोने करने वाला) भी था वह कहता है कि शीघ्र खरगोश को मार कर इसका माँस अस्थियों सहित राहप को खा लेना चाहिये तथा इसे अन्य स्थान पर न डाले एवं न किसी को दे। राहप भूल जाता है और वह शाषक को मार कर रसोई में भेज देता है, जिससे राहप के साथ उसका माँस अन्य राजपूत एवं उसकी अस्थियाँ भील खा लेते हैं। इसी घटना के कारण ही राहप चितौड़ में भावी शासक हुआ। वे राजपूत भी मेवाड़ में स्थिर हो गये तथा भीलों की स्थिति भी जम गई। सम्पूर्ण घटनाक्रम में भीलों को शामिल करना इस क्षेत्र में भीलों के महत्व को बताता है (कोठारी, 1985 : 112–114)। उपर्युक्त उदाहरण मेवाड़ में भीलों के प्रभाव को बताते हैं। बापा का तिलक दो भील व्यक्तियों द्वारा किया गया। यह बताता है कि भीलों ने बापा को अपना सर्वोच्च मुखिया मान लिया था। इस प्रकार मेवाड़ में एकलिंगनाथ को शासक स्वीकारने के पीछे बापा का ब्राह्मण परिवार में पालन, इस क्षेत्र में भीलों का प्रभाव तथा इस क्षेत्र में भक्ति प्रभाव अधिक होना भी रहा है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त मध्यकाल में कुछ सामान्य लक्षण भी थे, जो कमोबेश भारत के सभी क्षेत्रीय राज्यों में दिखाई देते हैं, जिसने राजत्व सम्बन्धों को प्रभावित किया था। हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में राजनीतिक केन्द्रीकरण समाप्त हो रहा था उसके स्थान पर बहुत सारे क्षेत्रीय राज्यों का उदय हो रहा था (वर्मा, 2009 : 1)। सामान्यतः इन क्षेत्रीय राज्यों में एक समानता देखने को मिल रही थी और वह थी–सामन्तीकरण, तीर्थ, मन्दिर, महात्म्य और पुजारी। हर्ष के बाद सामन्तीकरण एक महत्त्वपूर्ण

विशेषता के रूप में उभर रहा था (Kulke and Diltmar 1998 : 122)। राजा के सामन्त के साथ सम्बन्ध उसके शासन (राजत्व) की वैधता एवं उसके स्वयं के व्यक्तित्व पर निर्भर थे। इसके सहायक बने ब्राह्मण एवं उसके द्वारा किये गए धार्मिक कर्मकाण्ड तथा राजत्व का दैवीय सिद्धान्त। राजा में राजत्व के अधिरोपण का कारण यह भी था कि सामन्त उसकी अवज्ञा न करें (Kulke and Diltmar 1998 : 128–129)। प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म में तीर्थ स्थानों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। तीर्थों की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है, कालान्तर में इनकी संख्या में वृद्धि होती चली गई। मध्यकाल में कई स्थानीय तीर्थों का विकास हुआ। तीर्थ अर्थात् पवित्र स्थान, जिसका सम्बन्ध किसी न किसी स्थानीय अधिष्ठाता देवता से होता था, जहाँ उसका मन्दिर होता था। उस पवित्र स्थल की जानकारी देने वाला एक पवित्र धार्मिक ग्रन्थ अर्थात् महात्म्य होता था। इन महात्म्य का सम्बन्ध अठारह पुराणों में से किसी एक से जोड़ा जाता था। स्कन्दपुराण का सम्बन्ध उत्तर मध्यकाल में रचे गये विभिन्न महात्म्य से मिलता है (Kulke and Diltmar 1998 : 138) जगन्नाथ मन्दिर की जानकारी का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत पुरुषोत्तमक्षेत्र महात्म्य है, जो स्कन्दपुराण का भाग है (Mohanty, Lenin 2012 : 31)। इसी प्रकार एकलिंगनाथ की जानकारी का स्त्रोत एकलिंग महात्म्य है, जो वायुपुराण का भाग है (मेनारिया 1976 : 18)। इन तीर्थों का महत्त्वपूर्ण योगदान यह था कि इन्होंने क्षेत्रीयकरण के बढ़ते युग में सांस्कृतिक एकता के निर्माण का कार्य किया। विजयनगर के शासकों में श्रृंगेरी के प्रति आस्था हरिहर के समय से ही दिखाई देती है। एकलिंग महात्म्य में भी मेदपाट (देखें टिप्पणी–6) एवं उसके नागद्रह (देखें टिप्पणी–7) तीर्थ की महिमा का उल्लेख किया गया है। बापा ने भी राजकाज के बाद अपने जीवन का अन्तिम समय नागद्रह तीर्थ में ही व्यतीत किया था (ओझा 2015 : 121)। उनकी समाधि वर्तमान नागदा में बनी हुई है। मेवाड़ के शासक सदैव राज्याभिषेक के बाद तलवार बन्धाई के लिए एकलिंगनाथ के समक्ष उपस्थित होते थे (जुगनू 2004 : 260)। महात्म्य परम्परा में भी राजनीतिक एकता के तत्व दिखाई देते हैं, जिन्होंने राजनीतिक विखण्डनवादी शक्तियों पर अंकुश लगाने में मनोवैज्ञानिक भूमिका निभाई थी, जैसे एकलिंगपुराण से ज्ञात होता है कि एकलिंगजी की कृपा से बापा को राज्य प्राप्त हुआ था तथा इस राज्य की रक्षा राष्ट्रसेना नामक देवी इस राज्य की रक्षा करेगी (जुगनू एवं शर्मा 2011 : 118)। मध्ययुग, जो कि भक्ति आन्दोलन से भी प्रभावित था उस समय इन दैवीय तत्वों को राज्य में समाहित करने से निश्चय ही अपकेन्द्रीय राजनीतिक गतिविधियों को नियन्त्रित करने में सहायता मिली होगी।

जीवन सिद्धान्त एवं व्यवहार का मिश्रण है। सिद्धान्त युग विशेष की विचारधारा एवं मनोयोग का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि व्यवहार मनुष्य जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराता है। राजत्व का रहस्यवाद एक सिद्धान्त है एवं नीतिशास्त्र व अर्थशास्त्र व्यवहार है। मेवाड़ के राजत्व में दोनों रूप देखने को मिलते हैं। नन्दी का बाश्प (बापा) के रूप में अवतरित होना, यक्षों द्वारा चित्तौड़ का निर्माण होना, हारित राशि द्वारा बाश्प को एकलिंगनाथ का दीवाण बनाना आदि आख्यान राजत्व रहस्यवादी अर्थात् दैवीय रूप है। व्यवहार अर्थात् अर्थशास्त्र की परम्परा मेवाड़ में अमरसार एवं एकलिंगपुराण जैसे आदि ग्रन्थों में मिलती है। अमरसार में उल्लेख मिलता है कि राजा प्रजापालक, विनयशील, धैर्यवान, दानी, शस्त्र–शास्त्र का ज्ञाता हो एवं योग्यता, गुरुजन एवं अधीनस्थ शासकों का सम्मान करने वाला होना चाहिए। इस प्रकार मेवाड़ के राजत्व में धार्मिक के साथ–साथ लौकिक आवश्यकताओं को पुरा स्थान दिया गया है। मध्यकाल, जिसमें विकेन्द्रीकरण की प्रवृतियाँ हावी थी यहाँ राजनीतिक विखण्डन के तत्व काफी उग्र थे। इस समय कई क्षेत्रीय राज्यों का उदय हो रहा था, जिसमें भी क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर विभाजन दिखाई देते हैं। इन विभाजनकारी शक्तियों पर नियन्त्रण रखने के लिए धर्म का सहारा लिया गया। यह मध्यकाल की विशेषता थी शक्ति

अर्थात् राजत्व को धर्म के माध्यम से वैधता, प्रामाणिकता दिलाई जाती थी।

टिप्पणी

1. अमरसार की रचना पं. जीवंधर ने महाराणा अमरसिंह प्रथम के समय की थी। इस ग्रन्थ से मेवाड़ के इतिहास की जानकारी मिलती है। महाराणा अमरसिंह को मुख्य नायक के रूप में ही प्रस्तुत करने के कारण इस कृति का नाम अमरसार रखा गया है।
2. उपयोगितावादी–उपयोगितावाद एक उदारवादी विचारधारा है। ये व्यक्ति के सुख को साध्य मान कर, राज्य को ''अधिकतम् व्यक्तियों को अधिकतम् सुख'' को उपलब्ध करने का साधन मात्र मानता है।
3. विजयनगर वर्तमान हम्पी, कर्नाटक में स्थित है।
4. सन्त विद्यारण्य की मृत्यु होने पर हरिहर ने अपने पूज्य गुरु के स्मरणार्थ शृंगेरी मठ को कई गाँवों का दान दिया, जिनका नाम गुरु के नाम पर ही विद्यारण्यपुर रख दिया।
5. सायण, माधवाचार्य के भाई थे। इन्होंने विजयनगर राज्य में मन्त्री पद पर कार्य किया तथा चारों वेदों पर भाष्य लिखें।
6. मेदपाट–मेवाड़ राज्य का प्राचीन नाम मेदपाट था। उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम 'शिवी' था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी। यह मध्यमिका वर्तमान नगरी के नाम से जानी जाता है, जो कि चित्तौड़ जिले में स्थित है। यहां से द्वितीय शताब्दी ईस्वी पूर्व के तांबे के सिक्के मिले है जिस पर ब्राह्मी लिपि में 'मझिमिकाय शिबिजनपदस' (शिबिदेश की मध्यमिका का सिक्का) लेख अंकित है। परवर्त्ती संस्कृत लेखों में इसका नाम मेदपाट मिलता है। मेदपाट के संदर्भ में जहां गौरीशंकर हीराचंद ओझा एवं गोपीनाथ शर्मा का मानना है कि इस क्षेत्र पर पहले मेद अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से यह क्षेत्र मेदपाट (मेवाड़) कहा जाने लगा। इस संदर्भ में गोपीनाथ शर्मा यह भी मानते है कि सतत् रूप से यहाँ के शासक म्लेच्छो से संघर्ष करते रहे अतएव इस देश को 'मेद' अर्थात् 'म्लेच्छो को मारने वाला' की संज्ञा दी गयी और यह मेदपाट कहलाया।
7. नागद्रह तीर्थ–वर्तमान का उदयपुर के कैलाषपुरी में एकलिंगजी मन्दिर के समीप का नागदा क्षेत्र। नागदा मेवाड़ की प्राचीन राजधानी भी थी।

सन्दर्भ :

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द 2015। *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1*। जोधपुर : राजस्थानी ग्रन्थागार।

उपाध्याय, गंगाप्रसाद 2006। *ऐतरेय ब्राह्मण*। प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

उपाध्याय, बलदेव 2003। *आचार्य सायण और माधवाचार्य*। प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

इब्ने, हसन 1997। *मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय ढाँचा*, (अनु.) कृपालचन्द्र यादव। नई दिल्ली : ग्रन्थ शिल्पी।

कोठारी, देव (सम्पा.) 1985। *रणछोड़ भट्ट प्रणीतम् अमरकाव्यम्*। उदयपुर : साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ।

गर्ग, दामोदरलाल 2013। *महाराणा प्रताप*। जयपुर : साहित्यागार।

जुगनू, श्रीकृष्ण एवं भँवर शर्मा 2011। *श्रीमद् एकलिंगपुराणम्*। दिल्ली : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान।

जुगनू, श्रीकृष्ण 2004। *चक्रपाणि और उसका साहित्य*। उदयपुर : महाराणा प्रताप स्मारक समिति।

पालीवाल, देवीलाल 2012। *महाराणा प्रताप महान्*। जोधपुर : नवभारत प्रकाशन।

बाशम, ए. एल. 2017। *अद्भुत भारत*, (अनु.) वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय। आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी।

मिश्र, कौशल किशोर 2012। *कामन्दकीय नीतिसार में राज्य व्यवस्था एवं सुशासन*। मेरठ : राहुल पब्लिशिंग हाउस।

मास्टर्स, ब्रायन (अनु.) 2011। *कैलाशदान उज्ज्वल*। जोधपुर महाराणा : राजस्थानी ग्रन्थागार।

मेनारिया, मोतिलाल 1976। *राजप्रशस्ति महाकाव्यम्*। उदयपुर : साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ।

वर्मा, हरिशचन्द्र, 2009। *मध्यकालीन भारत, भाग–1*। दिल्ली : मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर प्रा.लि.

श्यामलदास, 2007। *वीरविनोद, भाग–1*। उदयपुर : महाराणा मेवाड़ पब्लिकेशन्स ट्रस्ट।

शर्मा, प्रेमलता 1976। *एकलिंग महात्म्यम्*। वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास।

शास्त्री, के.एल.नीलकण्ठ 2014। *दक्षिण भारत का इतिहास*, (अनु.) वीरेन्द्र वर्मा। पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

शास्त्री, भानुकुमार (संम्पा.) 2010। *जीवंधर कृत अमरसार*। उदयपुर : अंकुर प्रकाशन।

Kulke, Hermann and Diltmar rothermund 1998. *A History of India*. New York : Routledge.

Mohanty, Lenin. (Ed.) 2012. Odisha Review. Reassassment of Jagannatha cult of Puri. *Information and Public relation department*. Odisha, LXVIII No. 11, P. No. 31.

राष्ट्रीय कार्यशाला
पाषाण कालीन औजार

पाषाण कालीन औजार निर्माण तकनीक कार्यशाला में कुलपति प्रो. एस.एस. सारंगदेवोत का सम्मान करते हुए।

पाषाण कालीन औजार निर्माण तकनीक कार्यशाला में डॉ. कुमार अखिलेश का सम्मान करते हुए।

पाषाण कालीन औजार निर्माण तकनीक कार्यशाला में श्री ओम प्रकाश शर्मा ''कुक्की'' का सम्मान करते हुए।

मेवाड़ के राजवंश की पीढ़ियावली प्रचीन काल से भाटों–बड़वों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों, बहियों, शिलालेखों, वंशवृक्षों इत्यादि के रूप में सुरक्षित उपलब्ध होती है। इसी के अन्तर्गत बड़वा परिवार के देवीदान द्वारा रचित मेवाड़ के राजाओं, राणियों, कुवरों और कुवरियों का हाल हस्तलिखित ग्रन्थ है। बड़वा देवीदान कृत ग्रन्थ में मेवाड़ राजवंश की पीढ़ियावली का विवरण महाराणा हम्मीर से महाराणा फतहसिंह तक का है।

देवीदान के विवरण में जन्म, गद्दीनशीनी की तिथि और स्थान, शासन की अवधि, माता का नाम, महाराणियों का नाम, उनके पिता का नाम एवं वंश की जानकारी और उनके पुत्र–पुत्रियों के नाम, पासवानों अथवा खवासणों के नाम एवं उनकी सन्तानों के नाम, कुवरों के नाम, कुवरियों के नाम तथा उनका किस परिवार में किसके साथ विवाह हुआ उसकी जानकारी, पत्नियों अथवा पासवानों द्वारा सती होने सम्बन्धी जानकारी, देहान्त तिथि इत्यादि का विवरण दिया गया है।

यह ग्रन्थ संस्थान के अभिलेखागार में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि के सम्पादन का कार्य डॉ. देवीलाल पालीवाल एवं सहायक सम्पादक का कार्य डॉ. गिरीशनाथ माथुर द्वारा किया गया है।

डॉ. कुलशेखर व्यास

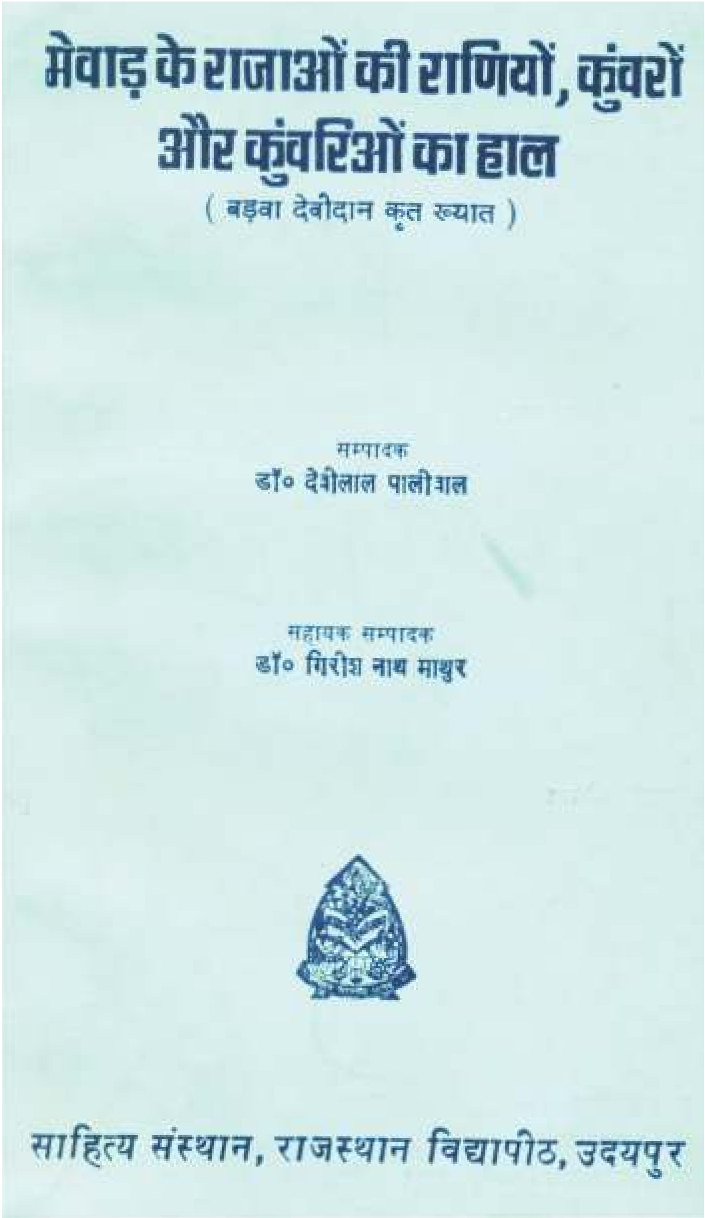

मेवाड़ के राजाओं की राणियों, कुंवरों और कुंवरिओं का हाल

(बड़वा देवीदान कृत ख्यात)

सम्पादक

डॉ० देवीलाल पालीवाल

सहायक सम्पादक

डॉ० गिरीश नाथ माथुर

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

साहित्य संस्थान, इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड–टू–बी–यूनिवर्सिटी), उदयपुर के लिये डॉ. जीवनसिंह खरकवाल द्वारा प्रकाशित
तथा चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., उदयपुर में मुद्रित।